6439

तित्थयर

फरवरी १९९२

षोडश वर्ष : दशम अंक

जैन भवन

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र
वर्ष १६ : अंक १०
फरवरी १९९३

संपादन
गणेश ललवानी
राजकुमारी बेगानी

आजीवन : एक सौ एक
वार्षिक शुल्क : दस रुपये
प्रस्तुत अंक : एक रुपया

प्रकाशक
जैन भवन
पी-२५ कलाकार स्ट्रीट
कलकत्ता-७००००७

मुद्रक
सुराना प्रिन्टिग वर्क्स
२०५ रवीन्द्र सरणी
कलकत्ता-७

सूची

जैन बिब्लिओग्राफी २९१
अन्तर्निरीक्षण :
प्रकृति और पद्धति २९८
त्रिषष्टि शलाका पुरुष
चरित्र ३०१
संकलन ३१८
जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या ३१९

ऋषभनाथ, त्रिपुरी, मध्यप्रदेश

जैन बिब्लिओग्राफी

श्री कुन्दनलाल जैन

जैन बिब्लिओग्राफी अंग्रेजी का एक महान् जैन ऐतिहासिक शोध संदर्भ ग्रंथ है। आगे अपने लेख में इसका संक्षिप्त रूप जै. बि. के नाम से प्रयुक्त करेंगे। यहाँ हम इसका समीक्षात्मक विस्तृत विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं। यह ग्रन्थ शोध छात्रों के लिए नितान्त उपयोगी और बहुमूल्य है। इसका संकलन स्व. बा. छोटेलालजी, कलकत्ता ने बड़े कठोर परिश्रम के पश्चात् तैयार किया था जिसका प्रथम भाग सन् १९४५ में प्रकाशित हुआ था जिसमें सन् १९२५ तक के उपलब्ध जैन शोध सन्दर्भों का संकलन था। स्व. बा. छोटेलालजी के विषय में हम आगे कुछ लिखेंगे। जब सन् १९४५ में पहला भाग प्रकाशित हो गया तो बा. छोटेलालजी ने अपनी शोध खोज और आगे बढ़ाई और सन् १९६० तक के उपलब्ध जैन सन्दर्भों का संग्रह किया जिसे सन् १९८२ में वीर सेवा मन्दिर दिल्ली ने द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण के रूप में दो भागों में प्रकाशित किया, यहाँ हम इसी संस्करण की समीक्षा प्रस्तुत कर रहे हैं।

जै०बि० दो भागों में प्रकाशित है, इसका आकार क्राउन ओक्टेवो साइज में है। कागज उत्तम और टिकाऊ है, ग्रन्थ सजिल्द है। प्रत्येक भाग का मूल्य तीन-तीन सौ रुपये हैं। छपाई उत्तम और स्पष्ट है, प्रूफ रीडिंग सावधानीपूर्वक किया गया है। ग्रन्थ संग्रहणीय और जैन इतिहास के सन्दर्भों की बहुमूल्य धरोहर है। इसके प्रथम भाग में १०४४ पृष्ठ तथा ९५६ प्रविष्टियाँ हैं। द्वितीय भाग में १९४८ तक लगभग ९०० पृष्ठ तथा प्रविष्टियाँ १९५४ हैं। इस तरह कुल २९१० प्रविष्टियाँ हैं तथा पृष्ठ संख्या १९४८ हो जाती है। इसका सम्पादन जैन विद्या के मूर्धन्य विद्वान् श्रद्धेय स्व. डा. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये, कोल्हापुर ने किया है जो सम्पादन कला के पारखी और महारथी थे। पर आश्चर्य की बात है कि उन्होंने इस ग्रंथ के विषय में अपने कुछ भी विचार व्यक्त नहीं किये हैं। लगता है वे ग्रंथ सम्पादित तो कर चुके थे पर जब ग्रंथ प्रकाशित हुआ तो वे दिवंगत हो गये थे, यदि जीवित रहते तो अवश्य ही ग्रंथ की उपयोगिता और महत्ता पर अपने महत्वपूर्ण विचार व्यक्त करते। जो कुछ भी हो ग्रंथ के लिए यह निश्चय ही रिक्ततापूर्ण स्थिति है जो खटकती है। यह महान् ग्रंथ जैन शोध विद्या के मूर्धन्य मनीषी श्रद्धेय स्व. पं. जुगलकिशोरजी मुख्त्यार को सश्रद्धा समर्पित किया गया है, जो निश्चय ही इस योग्य थे।

इस ग्रंथ में Index न होने के कारण इस ग्रन्थ रत्नाकर से कोई शोध सन्दर्भ रूपी रत्न ढूंढ़ निकालना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य ही है। पर स्व. डा.उपाध्ये की सम्पादन कला ने सम्पूर्ण ग्रंथ को दस अध्यायों में विभाजित कर Index के अभाव की अंशतः पूर्ति कर दी है। वैयक्तिक सन्दर्भ खोज पाना तो नितान्त दुर्लभ है पर विषयगत अध्याय में से परिश्रम करके कुछ काम के सन्दर्भ ढूँढ़े जा सकते हैं किन्तु इससे Index की अभाव पूर्ति नहीं हो सकती है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में वीर सेवा मन्दिर दिल्ली के मंत्री महोदय का प्रकाशकीय वक्तव्य है जिसमें उन्होंने ग्रंथ के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए तीसरे भाग के रूप में Index पाठकों को शीघ्र ही देने का उल्लेख किया है किन्तु खेद की बात है कि दस वर्ष बाद भी इस ग्रंथ के Index के कहीं कोई आसार नहीं दिखाई देते हैं जिससे ग्रंथ की उपयोगिता और बहुमूल्यता घट रही है। शोधार्थी इसका भरपूर उपयोग नहीं कर पा रहे हैं। कोई इसे खरीदना भी नहीं चाहता क्योंकि Index के बिना इससे अभीप्सित सन्दर्भ प्राप्त कर पाना शोधार्थी को दुर्लभ है। इस ग्रंथ के प्रकाशन पर जो इतनी विपुल धन-राशि खर्च हुई है वह समाज की कठोर श्रम से उपार्जित सम्पत्ति का सदुपयोग-सा नहीं लगता है।

जैन० बि० के द्वितीय परिवर्द्धित सन् १९८२ के संस्करण में वी. से. म. के मंत्री महोदय के प्रकाशकीय वक्तव्य के अतिरिक्त शेष सन् १९४५ के प्रथम संस्करण के प्रकाशक श्री एस. सी. सील का प्रकाशकीय वक्तव्य, डा. कालिदास नाग का प्राक्कथन एवं बा. छोटेलालजी की भूमिका आदि ठीक वही है जो सन् १९४५ वाले संस्करण में थी। इस ग्रंथ में बा. छोटेलालजी का चित्र भी दिया गया है जिसमें वे तत्कालीन काली गोल टोपी पहिने हुए हैं जो उन दिनों फेल्ट केप के नाम से प्रसिद्ध हुआ करती थी। यह टोपी स्व. बाबूजी को बहुत रुचिकर होती थी। श्री एस. पी. सील ने २५ जुलाई १९४५ को अपने प्रकाशकीय वक्तव्य में प्रथम संस्करण का प्रकाशन भारतीय जैन परिषद् से होने का उल्लेख किया है। इसमें उन्होंने ग्रन्थ के महत्त्व और बा. छोटेलालजी के परिश्रम की सराहना करते हुए जैन समाज से अपील की है कि बौद्धों की भाँति जैनियों को भी जैन शोध के क्षेत्र में प्रगति करना चाहिए और ऐसे शोधपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित कराना चाहिए। उन्होंने इस ग्रन्थ में सन् १९०८ से १९२५ तक के उपलब्ध विभिन्न जैन शोध सन्दर्भों के संकलन का उल्लेख किया है। डा. कालिदास नाग जो अपने समय के मूर्धन्य इतिहासवेत्ता और

अग्रणी विद्वान् थे, ने अपने प्राक्कथन में इस ग्रन्थ की उपयोगिता और बा. छोटेलालजी के श्रम एवं बुद्धिकौशल की प्रशंसा करते हुए जैन अहिंसा को समाज और देश के लिए कल्याणकारी सिद्ध करते हुए इसके व्यवहारिक उपयोग के प्रति ध्यान आकर्षित किया है। यह प्राक्कथन ११ जुलाई १६४५ को कलकत्ता में लिखा गया था। अन्त में श्रावण कृष्णा प्रतिपदा वी. नि. सं. २४७१ तदनुसार २५ जुलाई १६४५ को कलकत्ता में बा. छोटेलालजी ने अपनी संक्षिप्त भूमिका में जैन संस्कृति का भारतीय सभ्यता और संस्कृति के विकास में योगदान की चर्चा करते हुए फ्रान्सीसी विद्वान डा. ए. गेरीनो के प्रति कृतज्ञता प्रकट की है जिन्होंने सन् १६०८ तक उपलब्ध जैन ऐतिहासिक एवं पुरातात्त्विक सन्दर्भों का संकलन कर दो महान् ग्रन्थों का प्रकाशन कराया था जिसमें प्रथम Essai De Bibliographie Jaina सन् १६०६ में तथा दूसरा Repertoire D' Epigraphie Jaina सन् १६०८ में प्रकाशित हुआ था। उन्हीं के चरण चिन्हों का अनुसरण करते हुए स्व. बाबूजी ने रॉयल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल के ग्रन्थागार, कलकत्ता म्यूजियम तथा अन्य साहित्यिक संस्थाओं के ग्रंथागारों में बैठकर एवं देश के विभिन्न ऐतिहासिक, पुरातात्त्विक एवं सांस्कृतिक केन्द्रों का परिभ्रमण एवं सर्वेक्षण और निरीक्षण कर सन् १६२५ तक उपलब्ध विभिन्न जैन सन्दर्भों की बारीकी से शोध-खोज कर संकलन किया और प्रथम संस्करण जै. बि. का प्रकाशन कराया। इसके लिए वे प्रतिदिन कई घंटों तक इन ग्रंथागारों की पत्र-पत्रिकाएँ, प्रकाशित ग्रन्थ, प्राचीन हस्तलिखित पांडुलिपियाँ, शिलालेख, मूर्तिलेख, यन्त्र-लेख, सिक्के, गजेटियर, जनगणना रिपोर्ट वर्षों तक पलटते रहे और उनसे जैन सन्दर्भ खोजकर नोट करते रहे। इस तरह सन् १६२५ तक की उपलब्ध सभी जैन सामग्री प्रथम संस्करण में १६४५ में प्रकाशित करा दी। इसके बाद भी वे अपने शोध कार्य में लगे रहे और मिशनरी की भाँति कार्य करते रहे। यद्यपि उनका स्वास्थ्य अनुकूल नहीं रहता था फिर भी जिनवाणी की आराधना में उन्होंने कोई कमी नहीं आने दी और १६६० तक की उपलब्ध सभी जैन सामग्री जै. बि. के दो भागों में दे दी जो सन् १६८२ में द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण के रूप में प्रकाशित हुई थी। खेद है कि स्व. बाबूजी द्वितीय संस्करण का प्रकाशन नहीं देख सके। वे सन् १६६६ में ही काल कवलित हो गये।

जै. बि. की सम्पूर्ण सामग्री दस अध्यायों में विषयवार विभाजित है और

प्रत्येक अध्याय अनेक उप-विषय में विभाजित होने से शोधार्थी को मोटे-मोटे सन्दर्भों की सूचना सरलता से उपलब्ध हो जाती है पर बारीक और गम्भीर सन्दर्भों को ढूंढ़ निकालना Index के बिना सर्वथा असम्भव है। यहाँ हम उन दस अध्यायों के विषय, उनकी प्रविष्टियों की संख्या, पृष्ठ संख्या एक-एक विषय के लिए प्रयुक्त पृष्ठ और प्रविष्टि आदि की तालिका प्रस्तुत कर रहे हैं साथ ही प्रत्येक अध्याय के विषयों के अन्तर्गत आने वाले उप-विषयों का भी उल्लेख कर रहे हैं। तालिका निम्न प्रकार है :

अध्याय	विषय	प्रविष्टि संख्या तक	कुल प्रविष्टियाँ	पृष्ठ संख्या तक	कुल पृष्ठ
प्रथम	प्रमुख संदर्भ ग्रंथों का विवरण	३५६		३४२	
द्वितीय	कला, पुरातत्त्व एवं प्राचीन लेख	६५६	५१७	१०४४	७०२
तृतीय	इतिहास और काल गणना	१५०६	५५३	१३६१	३४७
चतुर्थ	भूगोल और यात्राएँ	१५७४	६५	१४१०	१६
पंचम	जीवन चरित्र (बायोग्राफी)	१६३५	६१	१४३०	२०
षष्ठ	धर्म	१८२०	१८५	१४६६	६६
सप्तम	दर्शन और तर्कशास्त्र	१६४०	१२०	१५६२	६३
अष्टम	समाज शास्त्र और शिक्षा	२०००	६०	१५८६	२७
नवम	भाषा और साहित्य	२५२६	५२६	१७८१	१६२
दशम	अन्य सामान्य विवरण	२६१६	३६०	१६१८	१३७

उपर्युक्त अध्यायों के विषयों को उप-विषयों में वर्गीकृत किया गया है जैसे प्रथम अध्याय में जिन सन्दर्भ ग्रन्थों से जैन शोध सन्दर्भ ढूंढ़े गये हैं उनका उल्लेख है (१) इनसाइक्लोपीडिया (२) जैन कोष ग्रन्थ (Dictionaries) (३) बिब्लिओग्राफीस (४) विवरणात्मक सूचियाँ (Catalogues) जिन-जिन भंडारों के catalogues में जैन संदर्भ विद्यमान हैं, उन सभी का उल्लेख है (५) गजेटियर्स (६) जनगणना रिपोर्ट्स (७) गाइड्स (शोध सहायक पुस्तकें) (८) मंदिर आदि आदि।

दूसरे अध्याय में (१) पुरातत्त्व (२) कला (३) मूर्ति लेख (४) शिलालेख (५) यन्त्र लेख (६) मुद्रा, सिक्के, सीलें (मुहरें) (७) मूर्ति विज्ञान (८) स्थापत्य कला आदि। बाकी अध्यायों में उप-विषय नहीं है। इस तरह स्व. बाबूजी को जहाँ कहीं भी जो जैन सन्दर्भ मिला उसका संग्रह जै. बि. में कर

दिया है और १६६० तक की उपलब्ध सम्पूर्ण जैन शोध सामग्री जै. बि. के दोनों भागों में समाहित है। अब सन् १६६० से १६६२ तक और पर्याप्त शोध सन्दर्भ सामग्री प्रकाश में आ गई है। किसी प्रतिष्ठित संस्था (जैसे ज्ञानपीठ या जैन विश्व भारती लाडनूं जो डीमृड युनिवर्सिटी बन गई है) को कुछ विद्वान नियुक्त कर इस सामग्री का संकलन करा लेना चाहिए। स्व. बा. छोटेलालजी तो व्यक्ति नहीं संस्था थे अतः वे इतना बड़ा काम अकेले कर गये। अब कोई ऐसा जैन व्यक्ति दृष्टिगोचर नहीं आता जो ऐसे विशाल कार्य को सम्पन्न कर सके। अतः संस्थाएँ ही ऐसा कार्य करा सकती हैं। इससे जैन संस्कृति, इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला के विषय में लोगों को पर्याप्त जानकारी प्राप्त हो सकेगी तथा भ्रान्तियाँ मिट सकेंगी। जै. बि. में प्रयुक्त ग्रंथों, पत्रों-पत्रिकाओं आदि के नामों का संक्षिप्तीकरण (Abbreviation) भी दिया गया है। इस तरह यह सम्पूर्ण ग्रंथ ग्रंथागारों एवं शोध पुस्तकालयों और शोध संस्थाओं के लिए तो उपयोगी है ही, शोधार्थी विद्वानों के लिए भी यह अधिक महत्वपूर्ण और उपयोगी है। स्व. बाबूजी इस ग्रंथ में जो कुछ उल्लेख कर गये हैं सम्भवतः काल दोष, ऋतु परिवर्तन एवं लोगों की उपेक्षा से कुछ का ह्रास या अभाव हो गया हो।

अब स्व. बा. छोटेलालजी के प्रति कुछ श्रद्धा सुमन समर्पित करना कोई अतिशयोक्ति न होगी। यद्यपि उनके बारे में कुछ लिखना सूर्य को दीपक दिखाने तुल्य होगा, फिर भी उन जैसे निरीह विद्वान बहुत कम हुआ करते हैं। वे मारवाड़ी जैन परिवार में जन्मे थे, उन पर लक्ष्मी और सरस्वती की अपार कृपा थी, पर उन्होंने लक्ष्मी की अपेक्षा सरस्वती को सदैव प्रधानता दी। वे निःसन्तान थे और युवावस्था में ही जीवन संगिनी के बिछोह के बाद तो वे जैनधर्म, जिनवाणी, जैन संस्कृति एवं जैन विद्वानों के प्रति पूर्णतया समर्पित हो गये। उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति परोपकार, ज्ञानार्जन, जैन संस्कृति संरक्षण एवं संस्थाओं की सेवा में समर्पित कर दी थी।

सन् १६४४ में स्व. मुख्तार सा. ने राजगृही में जब वीरशासन जयन्ती मनाने की अपील की तो स्व. बाबूजी का उस आयोजन को सफल बनाने में पूर्ण सहयोग रहा। तभी उन्होंने कलकत्ते में वीर शासन संघ की स्थापना की। स्व० बाबूजी की बहुत-सी शोध सामग्री इस संघ ने प्रकाशित की। स्व. बाबूजी वीर सेवा मन्दिर सरसावावाद, दिल्ली के प्रति तथा इसके संस्थापक स्व. पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार के प्रति पूर्णतया समर्पित थे, ये तीनों परस्पर

पर्यायवाची थे। स्व. बाबूजी का स्व. मुख्तार सा. के प्रति पितृतुल्य सम्मान और स्नेह था, स्व. पं. कैलाशचन्द्रजी ने तो इन्हें भक्त और भगवान की संज्ञा दी थी। पर दरियागंज के कुछ ईर्ष्यालु एवं झगड़ालू दिग्गजों को पिता पुत्र के ये मधुर सम्बन्ध रास न आये और उन्होंने परस्पर दोनों के बीच शंका और अविश्वास के बीज वपन कर दिए और परिणाम वही हुआ जो पंचतन्त्र के करटक और दमनक के बीच हुआ था, दोनों ही पिता-पुत्र एक दूसरे के विरोधी हो गये और संस्था वी. से. मं. एवं अनेकान्त की प्रगति रुक गई।

यद्यपि स्व. बा. छोटेलालजी ने एक सपना संजोया था कि वीर सेवा मंदिर जैनियों का एक उच्च कोटि का शोध संस्थान बने जिसे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से अनुदान प्राप्त हो तथा यहाँ दस-पन्द्रह उच्चकोटि के विद्वान जैन विद्या की विभिन्न विधाओं पर अनुसंधान करें। संस्था को किसी विश्व-विद्यालय से मान्यता प्राप्त हो, इसीलिए वे वी. से. मं. को सरसावा से उठाकर दिल्ली लाये थे, दिल्ली के दरियागंज—अन्सारी रोड नं. २१ पर विशाल भवन के लिए जमीन खरीदी तथा भवन निर्माण के लिए मई-जून की तपती दुपहरी में छतरी लगाकर अस्वस्थ दशा में भी निरन्तर निरीक्षण करते और ऐसा विशाल भवन तैयार करा गये, पर दरियागंज की सामाजिक राजनीति ने स्व. बाबूजी का सपना साकार न होने दिया। मैं १९४६ में सरसावा कुछ महीनों के लिए रहा था। उन दिनों वी. से. मं. अपने शोध कार्यों की ख्याति के लिए जैनियों में ही नहीं अपितु अजैन विद्वानों में प्रसिद्धि के चरम शिखर पर था। अनेकान्त की नई किरण पढ़ने के लिए लोग लालायित रहते थे। थोड़ा-सा भी विलम्ब होने पर शिकायती पत्रों की भरमार हो जाती थी पर १९५७ में जब मैं स्थायी रूप से दिल्ली प्रशासन की सेवा में आया तो देखा कि संस्था की हालत डगमगा चुकी थी। सन् १९६२ में स्व. बाबूजी ने वर्षों से बन्द पड़े 'अनेकान्त' को पुनः जीवित करने का प्रयास किया। लेख मांगने, प्रूफ रीडिंग करने, प्रेस में छपाने आदि के कार्य में दिन-रात परिश्रम किया करते थे। मैं उन दिनों स्व. बा. जी के सम्पर्क में आया और उनका सहायक बना तथा उनसे बहुत कुछ सीखा। उन्हीं दिनों मैंने दिल्ली के भण्डारों में स्थित पाण्डुलिपियों के catalogueing का काम प्रारम्भ कर दिया था। कठिनाई और परेशानी के समय उनसे, धीरज, साहस और प्रेरणा मिलती। काश! वे कुछ दिन और जीवित रह जाते तो मेरी 'दिल्ली जिन ग्रंथ रत्नावली' के सभी भाग प्रकाशित हो जाते जिसके आठ-नौ भाग अभी भी प्रकाशन की बाट जोह रहे हैं।

'अनेकान्त' के प्रकाशन में अत्यधिक श्रम के कारण उनका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरने लगा, फलस्वरूप वे अपने सपने की हत्या होते देख कलकत्ते लौट गये और ७० वर्ष की आयु पा सन् १९६६ के फरवरी में चिर निद्रा में विलीन हो गये।

स्व. बाबूजी के इस महान् ग्रन्थ के अतिरिक्त मूर्ति, यन्त्र संग्रह तथा खण्डगिरि उदयगिरि नामक दो शोध ग्रन्थ और प्रकाशित हैं, इनके अतिरिक्त उनके शोध निबन्ध 'अनेकान्त' जैसी अनेकों शोध पत्रिकाओं में नियमित रूप से प्रकाशित होते रहते थे। वे कलकत्ते के व्यापारिक, साहित्यिक एवं सामाजिक क्षेत्र के ख्याति प्राप्त प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। उनका कलकत्ते की विभिन्न संस्थाओं से पदाधिकारी के रूप में अथवा सामान्य सदस्य के रूप में सदैव सहयोग बना रहता था। कुछ संस्थाओं का उल्लेख इसी महाग्रंथ में प्रस्तुत चित्र के नीचे किया गया है। स्व. बाबूजी का देश के कई ख्यातिप्राप्त मूर्धन्य विद्वानों से स्नेहपूर्ण मैत्री सम्बन्ध थे जिनमें से कुछ के नाम तो अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी विख्यात हैं जैसे श्री बहादुरचन्द छाबड़ा, श्री शिवराम मूर्ति, डा. कालिदास नाग, डा. ए. एन. उपाध्ये, डा. विन्टरनित्ज, डा. ग्लासिनव, पं. महेन्द्रकुमारजी न्या. वा., पं. जुगलकिशोरजी मुख्तार, पं. नाथूरामजी प्रेमी, डा. आर. डी. बनर्जी, डा. ए. आर. भट्टाचार्य आदि आदि। वे श्रद्धेय श्री गणेशप्रसादजी वर्णी के बड़े भक्त थे, उनके अन्त समय में स्व. बा. जी ने जो सेवा की वह उल्लेखनीय है। वे अन्त समय तक वर्णी जी के सिरहाने बैठ कर उनकी वैयावृत्ति करते रहे और उन्हें सम्बोधित करते रहे। ऐसे थे सरस्वती के महान् पुत्र स्व. बा. छोटेलालजी जिनका पार्थिव शरीर यद्यपि आज नहीं है पर उनकी ज्ञानार्चना की यशःपताका यावच्चन्द्र दिवाकरौ तक निरन्तर लहराती रहेगी। भावी शोध छात्र उन्हें श्रद्धा और सम्मान से सादर नमन करते रहेंगे। इस तरह Jain Bibliography तथा उसके संकलयिता स्व. बा. छोटेलालजी की संक्षिप्त-सी समीक्षा कृपालु पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है, यदि कहीं कोई त्रुटि रह गई हो तो कृपालु पाठक क्षमा करें तथा मुझे उससे अवगत कराने का कष्ट करें। "को न विमुह्यति शास्त्र समुद्रे"। इति शम्

अन्तर्निरीक्षण : प्रकृति और पद्धति

महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर

मनुष्य मनोजीवी है। जीवन का विज्ञान मनोविज्ञान का ही विस्तार है। मनुष्य के द्वारा जहाँ शारीरिक एवं व्यावहारिक क्रियाएँ तथा प्रति-क्रियाएँ होती हैं वहीं मनोमस्तिष्क में भी क्रियाओं एवं प्रतिक्रियाओं का सातत्य रहता है।

प्रतिक्रिया या संवेदना होना जीवन की एक स्वाभाविक प्रकृति है, किन्तु उनकी गुणात्मकता पर चिंतन करना तनाव और त्रासदी से गुजरते इन्सान के लिए बेहद जरूरी है। हम जो करते हैं, या हमारे द्वारा जो रोज-ब-रोज होता रहता है उसकी आत्मनिष्ठ एवं वस्तुनिष्ठ समीक्षा होनी ही चाहिये। दिन-रात बिना किसी नियंत्रण के करते जाना, किन्तु उसकी उपादेयता और गुणात्मकता पर विचार न करना खुद को जोखिम भरे रास्ते पर ले जाना है।

निश्चित तौर पर जीवन जीने के लिए है और उसे भरपूर आनन्द के साथ जिया जाना चाहिये। हमें ऐसा सब कुछ करना चाहिए जिससे जीवन का सामाजिक निर्माण हो, मनो-प्रसन्नता का सृजन हो। हमारी स्थिति यह है कि हम करणीय-अकरणीय पर विचार नहीं करते। नतीजतन जब देखो तब हमारे दिमाग में तनाव का तांडव मचा रहता है। देखिये न, जो हमें नहीं करना चाहिए उसे हम हर हमेशा करते हैं और जो करना चाहिये, उसे करने में निरन्तर चूक हो रही है। निश्चित तौर पर हमें अपने गरेबां में झाँक कर देखना होगा कि हम किन मूल्यों और मानकों से विचलित और पतित हो रहे हैं। मनो-मस्तिष्क में ऐसी कौन-सी संवेगात्मक प्रतिक्रियायें हैं जो खुद हमारे अपने लिए ही भस्मासुर बनकर हम पर ही हमला कर रही है।

यह स्वाभाविक है कि मनुष्य बाह्य और आन्तरिक अभियोजनाओं से उत्तेजित होकर कई तरह की मानसिक प्रक्रियाएँ करता है। प्रत्यक्षीकरण और अनुभूति के दौरान ज्ञानात्मक और संवेगात्मक दोनों प्रकार की प्रतिक्रियाएँ होती हैं। मनुष्य की ज्ञानात्मक अनुभूति वास्तव में वस्तु की चेतना है, जबकि संवेग हमारी चंचल और गत्यात्मक प्रकृति है। अन्तर निरीक्षण का मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त स्वयं की मानसिक क्रियाओं एवं मानसिक अवस्थाओं की सूचना सम्पादित करने के लिए ही आज के संदर्भों से जुड़ा हैं।

अन्तर्निरीक्षण जीवन-विज्ञान की वह पद्धति है, जिसमें व्यक्ति अपनी मानसिक प्रतिक्रियाओं का खुद ही अध्ययन कर सकता है। मानसिक प्रतिक्रियाओं की गुणात्मकता पर विचार करने के लिए ही अन्तर्निरीक्षण पद्धति का जन्म हुआ है। बाह्य पदार्थों एवं क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं से अपना ध्यान हटाकर मानसिक क्रियाओं एवं संवेदनाओं पर अपना ध्यान केन्द्रित करना ही अन्तर्निरीक्षण पद्धति है।

युगीन सन्दर्भों में हमारा जीवन समस्याओं की जिन पर्तों से घिरा हुआ है और खुद हम ही न जाने कितनी विषमताओं को जन्म दे देते हैं। इसमें कोई दो मत नहीं है कि मकड़ी अपना जाला दूसरों को फांसने के लिए बुनती है, किन्तु दुर्भाग्य ही कुछ ऐसा है कि वह स्वयं ही उसमें उलझ जाती है। हम खुद भी तो ऐसे मकड़-जाल बुनते हैं जो शुरुआती दौर में तो मन को बड़े प्रमोद-विनोदकारी लगते हैं किन्तु किसे खबर बसन्त की चलती बयार कब अपना मिजाज बदल बैठे और तूफान का तेवर अपना ले।

आज मनुष्य के साथ सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि उसे मन ही मन दुलत्ती मार खानी पड़ रही है। एक तो पहले से ही उसके भीतर विकृतियाँ नीड़ बना बैठी हैं और दूसरे बाह्य जगत के सम्बन्धों ने उसे उत्तेजित कर डाला है। मानसिक तनाव की चिकित्सा के लिए मनुष्य को अपना अन्तर्निरीक्षण करना होगा और स्वयं द्वारा बनाये गये मकड़जाल से मुक्त होने का प्रयत्न करना होगा।

अन्तर्निरीक्षण मन के संवेगों का करना होता है, मानसिक प्रतिक्रियाओं एवं कषाययुक्त वृत्तियों का करना होता है। एक क्रोधी व्यक्ति क्रोध एवं क्रोध से उत्पन्न त्रासदी से मुक्त होने के लिए क्रोध पैदा करने वाले बाह्य उद्दीपकों एवं निमित्तों से अपना ध्यान हटाये और उसे मानसिक क्रियाओं पर लगाये इससे अन्तर्निरीक्षण होगा, मानसिक स्थितियों का पता चलेगा, मन के संवेगों को समझने का मौका मिलेगा।

अन्तर्निरीक्षण पद्धति सर्व सुलभ पद्धति है। इसे करने के लिए किसी भी समय या स्थान विशेष की बन्दिश नहीं है। इसे चाहे जहाँ, चाहे जब किया जा सकता है। इसमें जिसके निरीक्षण की जरूरत पड़ती है, वह तो सदा मनुष्य के साथ और पास रहती है। मन ही वह वस्तु है, जिसे निरीक्षित करना होता है, व्यक्ति को।

हालांकि कान्ट जैसे विद्वान तो अन्तर्निरीक्षण को असम्भव बताते हैं

क्योंकि इस पद्धति में कई कठिनाइयाँ भी हैं। मैं नहीं मानता कि अन्तर्निरीक्षण कोई ऐसी पद्धति है जिसे कार्यान्वित करना नामुमकिन हो। हाँ, थोड़ा सा कठिन जरूर है, और कठिन भी इसलिए क्योंकि हम बाह्य जगत के साथ इतने रच-पच गये हैं, कि स्वयं का अन्तर्जगत अमावस्या का अन्धकार नजर आता है। हमारी मानसिक प्रतिक्रियाएँ चाहे जितनी अस्पष्ट तथा अव्यक्त हों, किन्तु अभ्यास करने से हम इतने अधिक सतर्क हो सकते हैं कि हम जब चाहें तब अपनी मानसिक क्रियाओं का अवलोकन कर सकते हैं।

यद्यपि मानसिक क्रियायें चंचल, अस्थिर और परिवर्तनशील होती हैं तथापि हम स्मृति के सहारे उसकी तह तक पहुँच सकते हैं। अगर मानसिक क्रिया भीतर के समुद्र में विलीन हो जाये, तो हम 'स्मृति' के बल पर उसका पुनः स्मरण करके उसका अन्तर्निरीक्षण कर सकते हैं। जिन मानसिक क्रियाओं को ज्ञानात्मक और गुणात्मक दृष्टि से हम संग्रहणीय समझते हैं यदि हम मानसिक दृष्टि से सावधान हैं तो हम उन्हें ध्यान से पकड़ करके भी रख सकते हैं।

यदि बाह्य पदार्थ हमारे ध्यान को अपनी ओर खींचने का प्रयास करते हैं तो हमें अपने ध्यान को एकाग्र करने का प्रयास करना चाहिये ताकि हम अपना ध्यान मानसिक क्रिया में केन्द्रित कर सकें। चूँकि अन्तर्निरीक्षण पद्धति से प्राप्त होने वाला ज्ञान आत्मगत एवं व्यक्तिगत होता है, इसलिए प्रशिक्षण तथा अभ्यास द्वारा उसे वस्तुगत बनाया जाना चाहिये, ताकि जीवन का जगत के साथ सम्बन्ध तो रहे, किन्तु व्यक्ति को मानसिक विषमता का सामना न करना पड़े।

हम अन्तर्विरोधों एवं अन्तर्विषमताओं के जाल से बाहर आयें और जीवन के नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों को स्वीकार करते हुए अपने व्यक्तित्व के विकास का निजी तौर पर प्रयास करें। इसके लिए मानसिक शान्ति, स्वस्थता एवं स्वस्तिकर सम्पन्नता की जरूरत है। मन के परिमार्जन के लिये ही अन्तर्निरीक्षण का मार्ग है, जिसे कार्यान्वित करने के लिए जरूरी है अभ्यास एवं मन की एकाग्रता।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

रावण की बात सुनकर पति की वेदना से व्यथित होकर कुलीन मन्दोदरी उसी समय देवरमण उद्यान में गयी और वहाँ जाकर सीता से बोली, 'मैं रावण की पट्ट महाराणी मन्दोदरी हूँ। लेकिन अब से मैं ही तुम्हारी दासी बनकर रहूँगी। एतदर्थ तुम रावण की बात मानो। हे सीता, तुम धन्य हो कारण जिसके चरण-कमल की सभी सेवा करते हैं ऐसे बलवान मेरे पति तुम्हारे चरण कमलों की सेवा के लिए उद्यत हो गए हैं। यदि रावण-सा पति प्राप्त हो तो उसके सन्मुख प्यादे के समान भूचारी और तपस्वी राम तो रंक तुल्य है।' मन्दोदरी की यह बात सुन सीता क्रोधित होकर बोली, 'अरे कहाँ सिंह और कहाँ श्रृगाल? कहाँ गरूड़ और कहाँ काक पक्षी? कहाँ राम और कहाँ तुम्हारे पति रावण? अहो, तुम्हारा और तुम्हारा पति का दाम्पत्य जीवन योग्य ही है। कारण रावण परस्त्री से रमण करने की इच्छा करता है और तुम उसकी पत्नी होकर कुट्टनी का कार्य करने आयी हो? रे पापिन्, जब तुम्हारा मुँह देखना ही अनुचित है तब तुम से बात क्या करूँ? अतः तुम तुरन्त इस स्थान का परित्याग करो, मेरी दृष्टि से दूर हो जाओ।'

उसी समय रावण भी वहाँ आ पहुँचा और बोला, 'सीता तुम उसपर क्यों कुपित हो रही हो, वह तो तुम्हारी दासी है। मैं भी तो तुम्हारा दास हो गया हूँ। अब तुम मुझ पर प्रसन्न होओ। सीता, तुम मुझे दृष्टि द्वारा ही प्रसन्न क्यों नहीं कर रही हो?'

महासती सीता ने मुँह फिरा लिया और बोली, 'अरे ओ दुष्ट, लगता है तुझ पर यमराज की दृष्टि पड़ गयी है। इसीलिए तूने राम-प्रिया मुझे हरण किया है? हे हताश, हे अपार्थिव वस्तु का आशा कारी, तेरी इस आशा को धिक्कार! शत्रुओं के लिए कालरूप अनुज सहित राम के आगे तू कब तक जीवित रहेगा?'

सीता के इस प्रकार तिरस्कार करने पर भी रावण बारबार पूर्व की भाँति अनुनय-विनय करने लगा। ऐसी बलवती कामावस्था को धिक्कार!

उसी समय विपत्ति निमग्ना सीता को मानो देखने में असमर्थ होकर विश्व प्रकाशक सूर्य पश्चिम समुद्र में जाकर विलीन हो गए अर्थात् अस्त

हो गए। घोर रात्रि के प्रवेश करते ही घोर बुद्धि वाला रावण क्रोध और काम से अन्धा होकर सीता को विभिन्न प्रकार से कष्ट देने लगा। उल्लू घुत्कारने लगे, सियार फूँफाड़ने लगे, सिंह गर्जना करने लगे। बिलाव परस्पर झगड़ने लगे। बाघ पूँछ जमीन पर फटकारने लगे, साँप फूत्कारने लगे। भूत प्रेत पिशाच और बेताल नंगी बरछियाँ हाथ में लिए वहाँ टहलने लगे। ये सब रावण की माया से रचित होकर यमराज के सभासदों की तरह कूदते-फाँदते कुत्सित् अंगभंगी करते-करते सीता को डराने लगे। सीता मन ही मन पंच परमेष्ठी का ध्यान करती हुई चुपचाप बैठी रही अत्यंत् भयभीत् होकर भी रावण की इच्छा नहीं की।

विभीषण ने रात्रि का यह सारा वृत्तान्त सुना। अतः रावण के पास जाने के पूर्व वह सीता के पास गया और पूछा, 'भद्रे, तुम कौन हो? किसकी पत्नी हो? कहाँ से आयी हो? यहाँ तुम्हें कौन लाया है? सब कुछ मुझे निडर होकर बताओ? कारण मैं पर-स्त्री के लिए सहोदर तुल्य हूँ।'

उसे मध्यस्थ समझकर नीचा मुख किए सीता बोली, 'मैं राजा जनक की कन्या हूँ और विद्याधर भामण्डल मेरा भाई है, रामचन्द्र मेरे पति हैं। राजा दशरथ की मैं पुत्रवधु हूँ, मेरा नाम सीता है। अनुज सहित मेरे पति दण्डकारण्य में आये थे। मैं भी उनके साथ आयी थी। वहाँ मेरे देवर ने एक दिन घूमते हुए आकाश स्थित एक खड्ग देखा। कौतुकवश उन्होंने वह खड्ग हाथ में ले लिया और उसकी धार की परीक्षा करने के लिए समीप के वंशजाल को छेद डाला। परिणामतः वंशजाल में स्थित खड्ग के साधक का मस्तक अज्ञानवश कट गया।

'युद्ध की इच्छा नहीं रखने वाले निरपराध व्यक्ति की हत्या मेरे हाथों से हो गई, यह बहुत निकृष्ट कार्य हो गया।' इसी प्रकार अनुताप करते हुए वे राम के पास आए। इसके थोड़ी देर बाद ही मेरे देवर के पद्चिह्नों का अनुसरण करती हुयी उस खड्ग की कोई उत्तर-साधिका क्रुद्ध होकर हमारे पास आयी। इन्द्र-से अद्भुत रूपवान मेरे पति को देखकर काम-पीड़ित उसने मेरे पति से क्रीड़ा करने की प्रार्थना की। मेरे पति के अस्वीकार करने पर वह वहाँ से चली गयी और एक वृहद राक्षस सैन्य लेकर लौटी। संकट पड़ने पर सिंहनाद करोगे राम की इस अनुज्ञा को स्वीकार कर लक्ष्मण युद्ध करने चले गये। कोई राक्षस मिथ्या सिंहनाद कर मेरे पति को दूर ले गया। तदुपरान्त निकृष्ट मनोभिलाषी अपनी मृत्यु की इच्छा से रावण मुझे हरण कर यहाँ ले आया।'

सीता की बात सुनकर विभीषण रावण के पास गया और प्रणाम कर बोला, 'हे स्वामी, आपने हमारे कुल को कलंकित करने वाला यह कार्य किया है। राम-लक्ष्मण जानकी के लिए यहाँ आएँ उसके पूर्व ही आप जानकी को लौटा दीजिए।' विभीषण की बात सुनकर रक्तिम चक्षु रावण बोला, 'अरे ओ डरपोक, यह क्या कहता है? तू मेरे पराक्रम को भूल गया है क्या? अनुनय-विनय से सीता अवश्य ही मेरी पत्नी बनेगी। तत्पश्चात् यदि राम और लक्ष्मण यहाँ आएँ तो मैं उनकी हत्या करूँगा।' विभीषण बोला, 'हे अग्रज, नैमित्तिक ने कहा था, सीता के कारण हमारा कुल नष्ट होगा। नैमित्तिक का वही कथन लगता है सत्य होने वाला है। यदि ऐसा नहीं होता तो आप अपने अनुरक्त भाई के कथन को इस प्रकार नहीं टालते और मेरे द्वारा निहत दशरथ भी पुनः जीवित नहीं हो उठता। हे महाबाहु, जो भावी है वह अन्यथा नहीं होगी फिर भी मेरी आप से प्रार्थना है, आप इस कुल विनाशिनी सीता को छोड़ दें।'

मानो विभीषण की बात सुनी ही न हो, इस प्रकार रावण वहाँ से उठकर अशोक वृक्ष के नीचे से सीता को पुष्पक विमान में बैठाकर अपना ऐश्वर्य दिखाने लगा और कहने लगा, 'हे हंसगामिनी, रत्नमय शिखरयुक्त व मधुर जलस्रोतों से परिपूरित यह पर्वत मेरा क्रीड़ा पर्वत है। नन्दन वन-से ये सभी उद्यान हैं, इच्छानुसार भोग करने योग ये धारागृह हैं, हंस सहित क्रीड़ा करने के लिए ये नदियाँ हैं। हे शुभ्रे, स्वर्ग तुल्य ये रतिगृह हैं इनमें जहाँ भी तुम्हारी इच्छा हो मेरे साथ क्रीड़ा करो।' किन्तु सीता हंस की तरह राम के चरणों का ही ध्यान करती रही। रावण के इस कथन को सुनकर भी किंचित मात्र क्षोभ उसके मन में उत्पन्न नहीं हुआ। समस्त रमणीय स्थानों में भ्रमण कर अन्त में रावण ने पुनः सीता को अशोक वृक्ष के नीचे छोड़ दिया।

जब विभीषण ने देखा कि रावण उन्मत्त हो गया है, वह मेरी बात सुनेगा नहीं, उसने उसी विषय की आलोचना के लिए कुल-प्रमुखों की सभा बुलवायी। उनके एकत्रित होने पर विभीषण बोला, 'हे कुल-मन्त्रीगण, कामादि आन्तरिक शत्रु भूत की तरह विषम होते हैं। वह किसी भी प्रमादी मनुष्य को विवश कर देता है। हमारे प्रभु रावण अत्यन्त कामातुर हो गये हैं। एक तो काम ऐसे ही दुर्जय है, फिर यदि उसे परस्त्री का आश्रय मिल जाए तो फिर कहना ही क्या? उसी काम के कारण लंकापति अत्यन्त बलवान होने पर भी शीघ्र ही अत्यन्त दुःख के समुद्र में डूब जाएँगे।'

मन्त्रीगण बोले, 'हम तो केवल नाम के मन्त्री हैं वास्तविक मंत्री तो आप ही हैं जो इतनी दूर की दृष्टि रखते हैं। जबकि प्रभु काम के वशीभूत हो गए हैं तब उन पर हमारे कहने का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, जिस प्रकार मिथ्या दृष्टि मनुष्य पर जैन धर्म के उपदेश का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। सुग्रीव और हनुमान जैसे बलवान पुरुष भी अब राम के साथ हो गए हैं। न्यायी महात्मा का पक्ष भला कौन नहीं लेता ? सीता के कारण हमारे कुलक्षय की बात नैमित्तकों ने कही थी फिर भी जो कुछ पुरुषार्थ के अधीन है, समयानुकूल वही उपाय हम को करना चाहिए।' उनकी बात सुनकर विभीषण ने लंका के दुर्ग पर आवश्यक यन्त्र स्थापित किया। मंत्रीगण विचार रूपी नेत्रों से अनागत को भी देखते हैं।

उधर सीता के विरह से पीड़ित राम, सुग्रीव प्रदत्त आश्वासन पर किसी प्रकार दिन व्यतीत कर रहे थे। एक दिन उन्होंने लक्ष्मण को जो कुछ कहना था कह कर सुग्रीव के पास भेजा, लक्ष्मण तूणीर बाँध कर एवं हाथ में धनुष और खड्ग लेकर सुग्रीव के निकट गए। अपने पदचाप से पृथ्वी को विदीर्ण, पर्वत को कम्पित और तीव्र वेग के कारण दोनों हाथों के झपाटे से राह के दोनों पार्श्व के वृक्षों को गिराते हुए वे किष्किन्धा नगर पहुँचे। भृकुटि के कारण जिनका ललाट भयंकर हो गया है और आँखे लाल हो रही थीं ऐसे लक्ष्मण को देखकर द्वारपालों ने भयभीत होकर राह छोड़ दी। तब लक्ष्मण सीधे सुग्रीव के अन्तःपुर में प्रविष्ट हुए। लक्ष्मण का आना सुनकर कपिराज सुग्रीव तत्काल प्रासाद से बाहर निकले और मारे भय से काँपते-काँपते उनके सन्मुख जा खड़े हुए। तब लक्ष्मण क्रुद्ध कण्ठ से बोले, 'हे कपिराज, क्या तुमने अपना कर्तव्य पूर्ण कर लिया है जो निश्चिन्तमना अन्तःपुरिकाओं से परिवृत होकर सुख भोग रहे हो ? उधर तुम्हारे प्रभु राम वृक्ष के नीचे बैठकर एक-एक दिन एक-एक वर्ष की भाँति व्यतीत कर रहे हैं। लगता है तुम अपनी प्रतिज्ञा भूल बैठे हो। अब भी जागो और सीता को खोजने का प्रयास करो। नहीं तो फिर जाओ साहसगति के पथ पर। वह पथ अभी भी बन्द नहीं हुआ है।'

लक्ष्मण की बात सुनकर सुग्रीव उनके चरणों में गिरकर बोला, 'हे आर्य, मेरा प्रमाद सहन कर मुझे क्षमा करें और मुझ पर प्रसन्न हों। कारण आप भी मेरे प्रभु हैं। इस प्रकार लक्ष्मण को शान्त कर उनके पीछे-पीछे वह राम के पास गया और भक्ति पूर्वक उन्हें प्रणाम किया। तदुपरान्त अपने सैनिकों को आदेश दिया, 'हे सैनिकों, तुम सब पराक्रमी और सर्वत्र जाने में पूर्णतः

समर्थ हो। अतः चारों ओर जाकर सीता की खोज करो।' ऐसी आज्ञा पाकर सुग्रीव के सैनिक समस्त द्वीप, पर्वत वन समुद्र और गुफाओं में सीता का सन्धान करने लगे।

सीता हरण का संवाद सुनकर भामंडल रामचन्द्र के पास आए और दुःखी मन से वहीं रहने लगे। अपने प्रभु के दुःख में दुःखी विराध भी एक वृहद सेना लेकर वहाँ आया और पुराने नौकर की तरह उनकी सेवा करते हुए वहीं रहने लगा।

सुग्रीव स्वयं भी सीता के सन्धान में निकला और अनुक्रम से कम्बू द्वीप में जा पहुँचा। उसे दूर से आते देखकर रत्नजटी सोचने लगा क्या रावण ने मेरे अपराध का स्मरण कर मुझे मारने के लिए महावीर इस वानर-पति सुग्रीव को भेजा है? पराक्रमी रावण ने मेरी समस्त विद्याएँ तो पहले ही हरण कर ली हैं अब यह वानर-पति मेरा प्राण हनन करने आया है।

रत्नजटी ऐसा सोच ही रहा था कि सुग्रीव उसके निकट पहुँचे और उससे बोले, 'रत्नजटी, मुझे देखकर भी तुम खड़े क्यों नहीं हुए? आगे बढ़कर मुझ से मिलने भी नहीं आए! क्या आकाश में उड़ने में आलस आ रहा है?' रत्नजटी बोला, 'कपिराज, ऐसा नहीं है, रावण जब सीता का हरण कर लिए जा रहा था मैंने उसे रोका। उसी समय उसने मेरी समस्त विद्याएँ हरण कर ली थीं।'

यह सुनते ही सुग्रीव तत्काल उसे उठाकर रामके निकट ले आये। राम ने उससे सीता का वृत्तान्त पूछा। तब उसने सीता का वृत्तान्त कहना शुरू किया, 'हे देव, क्रूर और दुरात्मा रावण सीता का हरण कर ले गया है। हा राम, हा वत्स लक्ष्मण, हा भाई भामंडल, इस प्रकार पुकारती रोती सीता का शब्द सुनकर मुझे रावण पर क्रोध आया। मैं उससे लड़ने गया। क्रुद्ध होकर उसने मेरी समस्त विद्याएँ हरण कर लीं।

सीता का वृत्तान्त सुनकर राम आनन्दित हुए और सुरसंगीतपुर के नरेश रत्नजटी को आलिंगन में ले लिया। फिर राम बारबार उससे सीता के विषय में पूछने लगे। और वह भी राम को प्रसन्न करने के लिए बारबार सीता की बात बताने लगा। तब राम ने सुग्रीवादि योद्धाओं से पूछा, 'यहाँ से राक्षसपुरी लंका कितनी दूर है?' उन्होंने उत्तर दिया, 'वह पुरी दूर हो या निकट उससे क्या फर्क पड़ता है? उस विश्वविजयी रावण के सम्मुख तो हम तृण तुल्य हैं।'

राम बोले, 'मैं युद्ध में विजय प्राप्त कर सकूँगा या नहीं इस बात को लेकर तुम लोग अभी से क्यों चिन्तित हो? तुम लोग इच्छित वस्तु दिखाने की

तरह मुझे उसे दिखा दो। तदुपरान्त लक्ष्मण के धनुष से निकले तीर जब उसकी कण्ठ-नाली से रक्त पान करेंगी तब समझ लोगे वह कितना वीर और सामर्थ्यवान है।'

लक्ष्मण बोले, 'वह रावण वीर है जिसने छल का आश्रय लेकर ऐसा कार्य किया है? संग्राम रूपी नाटक के दर्शक के रूप में तुमलोग देखोगे कि उस कपटाचारी का शिरच्छेद क्षत्रियोचित रूप में मैं किस प्रकार करता हूँ।'

जामवन्त बोले, 'आर्य, आप में वह सामर्थ्य है यह तो ठीक है किन्तु अनलवीर्य नामक एक ज्ञानी साधु ने कहा था कि जो व्यक्ति कोटिशिला को उठाएगा वही रावण का वध करेगा। अतः हमलोग के विश्वास के लिए आप उस शिला को उठाएँ।' 'मैं प्रस्तुत हूँ' कहते हुए लक्ष्मण उठ खड़े हुए। तदुपरान्त वे विमान के द्वारा लक्ष्मण को वहाँ ले गए जहाँ कोटिशिला थी। लक्ष्मण ने तुरन्त उस शिला को अपने हाथों से उठा लिया। यह देखकर देव 'साधु साधु' कहकर उन्हें सम्बोधित करते हुए पुष्पवृष्टि करने लगे। अब सबको विश्वास हो गया। वे पूर्व की भाँति ही लक्ष्मण को विमान में बैठाकर राम के पास किष्किन्धा में लौट आए।

तब वृद्ध कपिगण बोले, 'आपके द्वारा रावण का वध अवश्य होगा। किन्तु नीतिवान पुरुषों का कर्तव्य है प्रथम दूत भेजना। यदि सन्देश-वाहक दूत द्वारा ही कार्य सम्पन्न हो जाता है तो राजाओं को कोई अन्य उद्यम की आवश्यकता नहीं होती। अतः किसी वीर पुरुष को दूत के रूप में वहाँ भेजा जाए? क्योंकि लंकापुरी में प्रवेश और निष्क्रमण उभय ही कठिन है। दूत पहले वहाँ जाकर विभीषण से मिले और सीता को लौटाने के लिए कहा। कारण राक्षस कुल में वही एक मात्र नीतिज्ञ है। रावण यदि इस बात पर कान न दे तो वह आपके पास लौटकर आ जाएगा।'

उनके कथन पर राम के सहमत होने से सुग्रीव ने श्रीभूति के द्वारा हनुमान को बुलवा भेजा। सूर्य-से तेजसम्पन्न हनुमान ने तुरन्त आकर सभा में उपविष्ट राम को प्रणाम किया। सुग्रीव ने रामसे कहा, 'पवनंजय के पुत्र हनुमान विपत्ति के समय हमारे एक मात्र साथी हैं। इनके समान विद्याधरों में कोई नहीं हैं। अतः सीता का संवाद लाने के लिए आप उनको भेजें।'

हनुमान ने कहा, 'विद्याधरों में मुझ-से अनेकों है। राजा सुग्रीव मेरे प्रति स्नेह वश ही ऐसा कह रहे है। गय, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, नील, द्विविद, मैन्द, जाम्बवन्त, अंगद, नल आदि अनेक विद्याधर यहाँ हैं, मैं भी

उन्हीं में से एक हूँ। यदि आप आदेश दें तो राक्षस द्वीप सहित लंका को उठाकर यहाँ लाऊँ या बान्धवों सहित रावण को बाँधकर यहीं ले आऊँ।'

राम बोले, 'हनुमान, तुम में यह सब करने की शक्ति है। किन्तु अभी तुम यही करो कि लंका में जाकर सीता से मिल कर स्मारक के रूप में मेरी यह मुद्रिका उसे दे देना और उससे स्मृति-चिह्न रूप चूड़ामणि ले आना। उससे कहना देवी, आपके वियोग में राम अत्यन्त व्याकुल हैं। वे आपका सतत ध्यान करते हैं। आप राम के वियोग में प्राणों का परित्याग मत करिएगा। धैर्य रखें। चंद दिनों में ही लक्ष्मण रावण को मारकर आपका उद्धार करेगा।' हनुमान बोले, 'प्रभु, आपकी आज्ञा का पालन कर मैं जब तक नहीं लौटूँ तबतक आप यहीं रहें।' ऐसा कहकर राम को नमस्कार कर अनुचरों सहित एक द्रुतगामी विमान में बैठकर वे लंका की ओर प्रस्थान कर गए।

आकाश पथ से जाते हुए हनुमान क्रमशः महेन्द्रगिरि के शिखर पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने अपने मामा महेन्द्र का महेन्द्रपुर देखा। उस नगर को देखकर हनुमान के मन में आया यही नगर है जहाँ से मेरी निरपराध माँ को मामा ने निकाल दिया था। ऐसा सोचते ही वे क्रोधित हो उठे। अतः रणवाद्य बजा दिया। ब्रह्माण्ड को चूर्ण कर सके ऐसी आवाज उस वाद्य से निकल कर दिशाओं में फैल गयी।

शत्रु की ऐसी शक्ति देखकर इन्द्र-से पराक्रमी राजा महेन्द्र भी सैन्य और पुत्रों को लेकर नगर के बाहर आए। दोनों में आकाश के बीच घनघोर युद्ध हुआ। आहत सैनिकों के कटे हुए अंग-प्रत्यंग जिनसे रक्त प्रवाहित हो रहा था धरती पर आकर गिरने लगे। देखकर लगा मानों प्रलयकाल का मेघ बरष रहा हो। रणक्षेत्र में तीव्र गति से घूमते हुए हनुमान ने प्रबल वायु जैसे वृक्ष को भग्न कर देती है उसी प्रकार शत्रु के सैन्य को भंग करने लगे। महेन्द्र राजा के पुत्र प्रसन्नकीर्ति उन्हें रोकने के लिए उनसे अपने सम्बन्ध न जानने के कारण निःशंक भाव से उन पर अस्त्र प्रहार करने लगे। दोनों समान बलवान और समान शक्तिसम्पन्न थे अतः एक दूसरे को अस्त्रों से क्लान्त करने लगे। युद्ध करते-करते हनुमान ने सोचा, 'हाय, मुझे धिक्कार है ? जो प्रभु के कार्य में विलम्बकारी इस युद्ध को छेड़ बैठा। मुहूर्त मात्र में मैं इसे जीत सकता हूँ। किन्तु ये मेरे मातृ-कुल के हैं। जो भी कुछ हो इस समय तो मुझे इन पर विजय प्राप्त करनी ही है। कारण युद्ध मैंने ही प्रारम्भ किया है।'

इस प्रकार विचार कर हनुमान ने प्रसन्नकीर्ति को शस्त्र प्रहार से अस्त-

ध्वस्त कर उनके शस्त्र, रथ और सारथी को नष्ट कर उन्हें पकड़ लिया। तदुपरान्त राजा महेन्द्र के निकट जाकर उन्हें प्रणाम कर बोले, 'मैं आपका भानजा हूँ, सती अंजना का पुत्र। मैं राम की आज्ञा से सीता की खोज में लंकापुरी जा रहा था राह में आपके इस नगर को देखा। एक समय आपने मेरी माँ को इस नगर से निष्कासित कर दिया था—यह बात मन में आते ही क्रोध में आकर मैं आपसे युद्ध करने को प्रवृत्त हो गया। आप मुझे क्षमा करें। मैं प्रभु राम के काम से जा रहा हूँ। आप भी वहाँ जाएँ।'

अपने वीर शिरोमणि भानजे को आलिंगन में लेकर राजा महेन्द्र बोले, 'लोगों के मुँह से इतने दिनों तक तुम्हारे पराक्रमी होने की बात ही सुनता आया हूँ। आज भाग्य योग से तुम्हें स्वनेत्रों से देखा है। अब तुम शीघ्र स्वामी के कार्य को सम्पन्न करने जाओ। तुम्हारा पथ कल्याणमय हो।' तब हनुमान ने लंका की ओर प्रस्थान कर दिया। और राजा महेन्द्र स्व-सैन्य सहित राम के निकट गए।

आकाश पथ से जाते हुए हनुमान दधिमुख नामक द्वीप पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने कायोत्सर्ग ध्यान में निमग्न दो मुनियों को देखा। उनके ही निकट उन्होंने तीन निर्दोष शरीर धारिणी कुमारी कन्याओं को देखा जो विद्या साधना में तत्पर होकर ध्यान कर रही थीं। उसी समय उस द्वीप में अकस्मात् दावानल प्रज्ज्वलित हुआ। कुमारी कन्याओं तथा मुनियों के इस दावानल में भस्म हो जाने की सम्भावना के कारण स्वधर्मी वात्सल्य से प्रेरित हनुमान ने विद्या द्वारा समुद्र से जल लाकर, जिस प्रकार मेघ जल बरसा कर अग्नि को शान्त करता है उसी प्रकार वारि-वर्षण कर उस दावानल को शान्त कर दिया। उसी समय उन कन्याओं को भी विद्या सिद्ध हो गयी। तब उन्होंने ध्यानरत मुनियों को प्रदक्षिणा देकर हनुमान से कहा, 'हे परम अर्हत् भक्त, आपने हमारी विपत्ति में रक्षा की है इसके लिए हम आपकी कृतज्ञ हैं। आपकी सहायता से असमय में ही हमारी विद्या सिद्ध हो गयी।'

हनुमान ने पूछा, 'आपलोग कौन हैं?' इसके प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा, 'इसी दधिमुख द्वीप में दधिमुख नामक एक नगर है। वहाँ गन्धर्वराज नामक एक राजा राज्य करते हैं। उनकी कुसुममाला नामक रानी के गर्भ से हम तीनों कन्याओं का जन्म हुआ। अनेक खेचरपतियों ने हमारे पिता से हमारे लिए प्रार्थना की। अंगारक नामक एक उन्मत्त खेचरपति ने भी हमारे लिए प्रार्थना की किन्तु हमारे स्वाधीनचेता पिता ने हममें से किसी को भी उसे नहीं दिया और एक मुनि से पूछा इन कन्याओं का पति कौन होगा? मुनि

बोले, 'जो साहसगति नामक विद्याधर को मारेगा वही तुम्हारी कन्याओं का पति होगा।' तब मेरे पिता उसकी खोज करने लगे किन्तु उनका कोई पता नहीं मिला। अतः वह कहाँ है यही जानने के लिए हम इस विद्या की साधना कर रही थीं। हमारी इस विद्या साधना को नष्ट करने के लिए उस दुष्ट अंगारक ने दावानल प्रकट किया, जिसे अकारण बन्धु आपने शान्त कर दिया। जो मनोगामिनी विद्या छः महीने में सिद्ध होती है आपकी सहायता से वह मूहूर्त्त मात्र में सिद्ध हो गयी।'

साहसगति का वध राम ने किया था और वे उनके कार्य साधन के लिए ही लंका जा रहे हैं और क्यों जा रहे हैं यह समस्त कथा हनुमान ने उन लोगों को बता दी। यह सुनकर वे प्रसन्न हुयीं और हनुमान द्वारा कथित बात पिता को जाकर सुनायी। तब गन्धर्वराज तीनों कन्याओं और वृहद् सेना लेकर राम के निकट पहुँचे।

वहाँ से वीर हनुमान लंका पहुँचे। वहाँ उन्होंने काल रात्रि-सी भयानक अशलिका नामक विद्या को देखा। विद्या भी उन्हें देखकर बोली, 'ओ बन्दर, तू कहाँ जा रहा है? अनायास ही तू मेरा भक्ष्य बन गया है।' ऐसा कहकर उसने मुँह फैलाया। हनुमान भी उसी प्रकार हाथ में गदा लिए उसके मुँह में प्रवेश कर गए और उसका पेट चीरकर सूर्य जैसे बादल से बाहर निकलता है उसी प्रकार निकल आए। उसने लंका के चारों ओर एक दीवाल का निर्माण कर रखा था। हनुमान ने अपने विद्याबल से जिस प्रकार मिट्टी के पात्र को तोड़ दिया जाता है उसी प्रकार उसे तोड़ दिया। वज्रमुख नामक एक राक्षस उस प्राकार का रक्षक था। वह क्रुद्ध होकर हनुमान से युद्ध करने लगा। युद्ध में हनुमान ने उसे मार डाला। उस राक्षस के विद्याबल से बल-वती लंकासुन्दरी नामक एक कन्या थी। स्व-पिता को निहत होते देख उसने हनुमान को युद्ध के लिए आह्वान किया। जिस प्रकार पर्वत पर बार-बार विद्युत्पात होता है उसी प्रकार वह हनुमान पर बार-बार शस्त्र प्रहार कर अपनी रण-पटुता प्रदर्शन करने लगी। हनुमान ने अपने अस्त्रों से उसके अस्त्रों को रोककर अन्त में उसे पत्रहीन लतिका की भाँति निःशस्त्र कर दिया।

'कौन है यह वीर?' कहती हुयी आश्चर्य सहित जैसे ही उसने हनुमान की ओर देखा वैसे ही काम-शर ने उसे बींध डाला अर्थात् वह काम के वशीभूत हो गयी। तब वह हनुमान से बोली, 'हे वीर, आपने मेरे पिता की हत्या कर

दी इसलिए क्रोधावेश मे बिना कुछ सोचे-समझे आपसे युद्ध करने लगी। एक साधु ने मुझे बहुत दिन पहले कहा था कि जो तेरे पिता की हत्या करेगा वही तेरा पति होगा अतः आपके वशीभूत मुझे आप ग्रहण करें। समस्त संसार में आप-सा वीर कोई नहीं है। इसीलिए आप जैसे पुरुष की पत्नी बनकर स्त्रियों में मैं स्वाभिमान पूर्वक रहूँगी।' ऐसा कहकर माथा नीचा किए वह शान्त रूप में खड़ी रही। प्रसन्न होकर सानुराग हनुमान ने भी उस विनयशीला कन्या के साथ गान्धर्व विवाह कर लिया।

उसी समय सूर्य पश्चिम समुद्र में जाकर डूब गया। मानों आकाश रूपी अरण्य में विचरण करते-करते क्लान्त होकर वह स्नान करने के लिए समुद्र में उतर गया। पश्चिम दिशा का उपभोग करते हुए सूर्य ने मानों सन्ध्या मेघ के बहाने उसके वस्त्र छीन लिए। पश्चिम दिशा में अरुण मेघ को देखकर लगा मानो अस्त होते समय सूर्य ने अपना तेज वहाँ छोड़ दिया है। मेरा परित्याग कर नवीन अनुरागी सूर्य अब नवीन अनुरागिनी पश्चिम दिशा के साथ केलि के लिए गया है सोचकर ग्लानि से पूर्व दिशा म्लान हो गई। क्रीड़ा स्थल का परित्याग करने के दुःख से कोलाहल के रूप में पक्षी क्रन्दन करने लगे। पति के दूर रहने पर रजस्वला स्त्रियाँ जिस प्रकार दुःखी हो जाती है उसी प्रकार चक्रवी पति-वियोग में दुःखी हो गयी। पति-वियोग में पतिव्रता स्त्री जैसे म्लानमुखी हो जाती है उसी प्रकार सूर्य रूपी पति अस्त हो जाने से पद्मिनी म्लान हो गयी। सान्ध्य समीर में पुलकित और ब्राह्मणों द्वारा पूजित गायें अपने बछड़ों से मिलने की उत्कण्ठा में वन से बस्ती की ओर दौड़ने लगी। सूर्य ने अस्त होते समय राजा जैसे युवराज को राज्य अर्पण करते हैं उसी प्रकार अपना तेज अग्नि को दे दिया। नगर नारियों ने जब दीप जलाए तो लगा मानों तारे और नक्षत्रों की शोभा उन्होंने चुरा ली है या यह कहो कि वे ही नक्षत्र पंक्तियाँ हैं। सूर्य के अस्त होने पर भी चन्द्रमा उदित नहीं हुआ अतः उसी अवसर पर अन्धकार चारों ओर छा गया। दुष्ट पुरुष छल करने में बड़े चतुर होते हैं। पृथ्वी और आकाश रूपी पात्र अन्धकार से भर गया मानों अंजन गिरि के चूर्ण से अथवा अंजन से उसे भर दिया गया है। उस समय जल-स्थल दिशा और आकाश कुछ भी दिखायी नहीं दे रहा था। यहाँ तक कि अपना हाथ भी दिखायी नहीं पड़ रहा था। खड्ग-से काले अन्धकारमय आकाश में नक्षत्र पुंज ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो पाशा खेलने के पट्ट पर कौड़ियाँ बिखेर दी गयी हों। काजल-सा श्याम और नक्षत्रमय आकाश पुण्डरीक कमल से यमुना-दह को स्मरण कराता रहा था।

जब अन्धकार चारों ओर व्याप्त हो गया। तब आलोकहीन समस्त चराचर पाताल-से लगने लगे। अन्धकार बढ़ जाने पर दूतियाँ नागर की सन्धान में निःशंक होकर स्वच्छन्द विचरण करने लगीं, जैसे समुद्र में नदियाँ विचरण करती हैं। अभिसारिकाओं ने नुपुरों को घूटने तक चढ़ा लिया (जिससे शब्द न हों) और कस्तूरी का विलेपन लगा तथा श्याम वस्त्र धारण कर इधर-उधर विचरण करने लगीं।

उसी समय उदयगिरि के शिखर पर किरण रूपी अंकुर का महाकन्दभूत चन्द्र उदित हुआ। उसे देखकर लगा मानो किसी भव्य प्रासाद पर स्वर्ण कलश स्थापित किया गया है। और अपसृयमान अन्धकार स्वाभाविक शत्रुता जन्य कलंक के बहाने चन्द्र के साथ द्वन्द्वयुद्ध कर रहा है। विस्तृत गोकुल में जैसे वृष विचरण करते हैं उसी प्रकार विस्तृत आकाश में चन्द्र तारिकाओं के मध्य विचरण करने लगा। चन्द्र की देह पर लगा कलंक ऐसा लग रहा था मानों रजत पात्र में कस्तूरी रख दी गयी है। चन्द्र से निकली किरणें ऐसी लग रही थीं मानों विरही जनों ने कामदेव के तीर को हस्त लाघव से स्खलित कर दिया है। चिरभुक्ता किन्तु सूर्यास्त के कारण दुर्दशाग्रस्त कमलिनी का परित्याग कर भ्रमरगण अब कुमुद की स्तुति कर रहे हैं। नीचों की मित्रता को धिक्कार! चन्द्र स्व-किरणों को गिराकर शेफाली फूल को झराता हुआ ऐसा लग रहा था मानो अपने मित्र कामदेव के लिए पुष्पशर तैयार कर दिया है। चन्द्रकान्त मणि के जल में नवीन सरोवर निर्माण कर चन्द्र तब ऐसा लग रहा था मानो सरोवर के बहाने अपनी कीर्त्ति स्थापित कर रहा है। दिक-समूह के मुख को निर्मल करने वाली ज्योत्स्ना ने किन्तु इधर-उधर विचरण करती कुलटाओं का मुख पद्मिनी की तरह म्लान कर दिया। अतः निःशंक होकर हनुमान ने वह रात्रि लंका सुन्दरी के साथ क्रीड़ा करके व्यतीत की।

भोर होते ही इन्द्र की प्रिय (पूर्व) दिशा को मंडित कर स्वर्ण सूत्र-सा किरण युक्त सूर्य उदित हुआ। सूर्य किरणों ने अविरल गिरकर विकसित कुमुद को मुदित कर दिया। जाग्रत होने पर रमणियों ने अपनी वेणियाँ खोली अतः फूल धरती पर बिखर गए। भ्रमर उन फूलों पर गुंजन करने लगे। लगा मानों फूल केशपाश के वियोग में क्रन्दन कर रहा हो। खण्डिता नायिका के मुख से जिस प्रकार (दुःखार्त) निःश्वास निकलता है उसी प्रकार रात्रि जागरण करने के कारण रक्त नेत्रा गणिकाएँ कामी जन के घर से निकलने लगीं। उदित सूर्य के तेज ने जिसकी कान्ति-वैभव लूट लिया

था ऐसा चन्द्रमा लता-तन्तुओं के वस्त्र-सा दिखाई देने लगा। जिस अन्धकार को समस्त ब्रह्माण्ड धारण नहीं कर पा रहा था उस अन्धकार को सूर्य ने उसी प्रकार उड़ा दिया जैसे प्रचण्ड वायु मेघ को उड़ा देती है। रात्रि की निद्रा दूर हो जाने से नगरवासी अपने-अपने कार्य में लग गए।

भोर होते ही पराक्रमी हनुमान ने लंका सुन्दरी से मधुर वचन द्वारा विदा ली और लंका में प्रवेश कर गए। तदुपरान्त वीरधाम एवं शत्रु सैन्य के लिए भयंकर हनुमान ने विभीषण के घर में प्रवेश किया। विभीषण ने उनका सत्कार कर आने का कारण पूछा। हनुमान ने गंभीर भाव एवं अल्प शब्दों में उनसे कहा, 'रावण सीता को हरण कर लाया है। आप उसके छोटे भाई हैं अतः शुभ परिणाम विचार कर राम की पत्नी सीता को उसके हाथ से मुक्त कराएँ। यद्यपि रावण बलवान है फिर भी उसने राम पत्नी का हरण किया है। एतदर्थ परलोक में ही नहीं इस लोक में भी उसकी दुर्गति होगी।'

विभीषण बोले, 'हे हनुमान, तुम जो कुछ कह रहे हो वह ठीक है। मैंने अपने अग्रज से सीता को छोड़ देने का अनुरोध आगे भी किया था अब फिर आग्रह करूँगा। इस बार यदि वे मेरे कहने से सीता को छोड़ दें तो बहुत अच्छा होगा।'

तदुपरान्त वहाँ से उड़कर हनुमान जहाँ सीता थी उसी देवरमण उद्यान में गए। वहाँ उन्होंने अशोक वृक्ष के नीचे सीता को बैठे हुए देखा। देखा, उनके रूक्षकेश उड़-उड़ कर ललाट पर गिर रहे हैं। सतत् प्रवाहित नेत्रों के जल से वहाँ सरिता की सृष्टि हो रही है। हिमपीड़ित कमलिनी की भाँति उनका मुखपंकज म्लान और द्वितीया की चन्द्रकला की तरह देह क्षीण हो गयी है। उष्ण निःश्वास-पात से उनके अधर-पल्लव परिशुष्क हो गए हैं। स्थिर योगिनी की तरह वे राम के ध्यान में लीन हैं। उनका वस्त्र मलिन हो गया है—स्व-शरीर पर भी उनकी स्पृहा नहीं है।

उन्हें देखकर हनुमान सोचने लगे, 'ओह यही सीता है! ये तो वास्तव में शीलवती हैं। इनको तो देखकर ही मनुष्य पवित्र हो जाता है। सीताका विरह राम को पीड़ित कर रहा है यह तो उचित ही है कारण ऐसी रूपवती सुशीला और शुद्ध पत्नी भाग्यशाली को ही प्राप्त होती है। बेचारा रावण राम के ताप और अपने अतुल पाप से शीघ्र ही नष्ट हो जाएगा।' तदुपरान्त हनुमान ने अदृश्य होकर अपने साथ में लायी राम की अंगूठी को सीता की गोद में डाल दिया। उस अंगूठी को देखकर सीता प्रसन्न हुयी। उसे प्रसन्न देखकर त्रिजटा

रावण के पास जाकर बोली, 'इतने दिनों तक तो सीता दुःखी थी किन्तु आज वह प्रसन्न हो गयी है।' यह सुनकर रावण ने मन्दोदरी से कहा, 'लगता है अब सीता राम को भूल गयी है और उसकी इच्छा मेरे साथ रहने की हो गयी है अतः तुम जाकर उसे पुनः समझाओ।' अतः मन्दोदरी पति का दौत्य स्वीकार कर सीता को लुब्ध करने के लिए उसके निकट गयी और विनीत भाव से बोली, 'रावण अतुल वैभवशाली और अद्वितीय सुन्दर है। तुम भी रूप और लावण्य में उसके योग्य ही हो। यद्यपि विधाता ने योग्य पुरुष के साथ तुम्हारा सम्बन्ध स्थापित नहीं किया किन्तु अब योग्य सम्बन्ध होना वांछनीय है। हे जानकी, जो रावण सेवा करने योग्य है वही रावण तुम्हारी सेवा करना चाह रहा है। तब तुम उसे क्यों नहीं चाहती? हे शुभ्रे, तुम यदि रावण को चाहोगी तो मैं और अन्य सभी महीषियाँ तुम्हारी आज्ञा का पालन करेंगी।'

यह सुनकर सीता बोली, 'पति की दौत्यकारिणी दुर्मुखी, तेरे पति की तरह तेरा मुख भी देखने योग्य नहीं है। हे दुष्टा, खर आदि राक्षसों को मारने की तरह अब तेरे पति और देवरों को मारने के लिए राम-लक्ष्मण आ गये हैं। सोच ले मैं उनके चरणों में पहुँच गयी हूँ। हे पापिष्ठा, यहाँ से उठ और तुरन्त यहाँ से चली जा। मैं तुझसे बात भी करना नहीं चाहती।' सीता द्वारा इस प्रकार तिरस्कृत होकर मन्दोदरी उसी समय वहाँ से चली गयी।

उसके जाते ही हनुमान प्रकट हुए और करबद्ध होकर सीता को नमस्कार कर बोले—'हे देवी, सौभाग्य से राम, लक्ष्मण सहित कुशल हैं। उनकी आज्ञा से आपको खोजने मैं यहाँ आया हूँ। मेरे लौटने पर राम शत्रु संहार के लिए यहाँ आएँगे।'

आँखों में अश्रु भरकर सीता बोली, 'हे वीर, तुम कौन हो! इस दुर्लंघ्य समुद्र को पारकर तुम यहाँ कैसे आए? मेरे प्राणनाथ लक्ष्मण सहित आनन्द में हैं तो? तुमने उन्हें कहाँ देखा है? वे वहाँ अपना समय कैसे व्यतीत कर रहे हैं?'

हनुमान बोले, 'मैं पवनंजय का पुत्र हूँ। अंजना मेरी माता है। मेरा नाम हनुमान है। आकाशगामिनी विद्या से मैंने समुद्र का अतिक्रम किया है। राम ने सुग्रीव के शत्रु का संहार किया है। इसलिए इस समय वे उसके वश में अवस्थित है। दावानल जिस प्रकार पर्वत को तप्त करता है उसी प्रकार राम अन्य को तापित करते हुए आपके विरह में रात-दिन तप्त हो रहे हैं। हे स्वामिनी, गाय के बिना बछड़ा जिस प्रकार व्याकुल हो जाता है, उसी

भाँति लक्ष्मण आपके दुःख से कातर हो गए हैं और निरन्तर शून्य दृष्टि से आकाश को देखते रहते हैं। उन्हें लेशमात्र भी सुख नहीं है। कभी शोक से, कभी क्रोध से राम और लक्ष्मण सर्वदा दुःखी रहते हैं। सुग्रीव उन्हें बहुत आश्वासन देते हैं किन्तु इससे उन्हें शान्ति नहीं मिलती। जिस प्रकार देवगण इन्द्र की सेवा करते रहते हैं उसी प्रकार भामण्डल, महेन्द्र, विराध आदि खेचर अनुचर की भाँति रात-दिन उनकी सेवा करते रहते हैं। हे देवी, आपके अनुसंधान के लिए सुग्रीव ने मुझे उपयुक्त बताया अतः राम ने अपनी मुद्रिका देकर मुझे यहाँ भेजा है। प्रतिदान में उन्होंने आपसे आपका चूड़ामणि माँगा है।'

इस प्रकार राम का वृत्तान्त सुनकर सीता आनन्दित हो गयी। इक्कीस दिन तक उन्होंने आहार ग्रहण नहीं किया था, उस दिन हृदय में सन्तोष हो जाने से और हनुमान के आग्रह पर उन्होंने आहार ग्रहण किया। फिर वे बोलीं, 'हे वत्स! मेरे चिन्ह स्वरूप यह चूड़ामणि तुम लो और यहाँ से शीघ्र चले जाओ। यहाँ अधिक समय तक रहने पर तुम्हें कष्ट उठाना पड़ेगा। क्रूर राक्षस को यदि तुम्हारे आने की खबर मिल गई तो वे तुम्हें मारने के लिए अवश्य ही यहाँ आएँगे।'

सीता का यह कथन सुनकर हनुमान मुस्कुराए और हाथ जोड़कर बोले, 'माँ, मेरे प्रति वात्सल्य भाव होने के कारण भीत होकर आप ऐसा कह रही हैं। मैं त्रिलोक विजयी राम का दूत हूँ। मेरे लिए बेचारा रावण और उसकी सेना क्या है? अर्थात् तुच्छ है। हे स्वामिनी, आज्ञा दें तो रावण को सेना सहित मारकर आपको कन्धे पर बैठाकर राम के पास ले जा सकता हूँ।'

सीता हँसकर बोली, 'हे भद्र, तुम्हारी बात पर विश्वास हो रहा है कि तुम अपने प्रभु राम को लज्जित नहीं करोगे। तुम राम और लक्ष्मण के दूत हो इसलिए तुम में सर्व प्रकार की शक्ति का होना सम्भव है। किन्तु मैं परपुरुष का लेशमात्र भी स्पर्श नहीं चाहती। अतः तुम राम के पास जाओ। यहाँ तुम्हें जो कुछ करना था वह कर लिया। अब तुम्हारे वहाँ जाने पर जो कुछ करना उचित होगा राम करेंगे।

हनुमान बोले, 'माँ, अब मैं राम के पास जा रहा हूँ, किन्तु इन राक्षसों को अपना सामान्य-सा पराक्रम दिखाकर जाऊँगा। रावण स्वयं को सर्वविजयी समझता है। वह अन्य के बल को स्वीकार करना नहीं चाहता। अतः मैं उसे दिखला देना चाहता हूँ कि राम तो क्या उनका दूत भी कितना पराक्रमी है।

पराक्रम की बात सुनकर 'तब ठीक है' कहकर सीता ने उन्हें अपना

चूड़ामणि दिया। चूड़ामणि लेकर उन्हें प्रणाम कर अपने पराक्रम से पृथ्वी को कम्पित करते-करते हनुमान वहाँ से चले गए।

तदुपरान्त वन्य हस्ती की भाँति अपने भुजबल से हनुमान ने देवरमण उद्यान को नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया। रक्त अशोक वृक्षों में निःशोक, वकुल वृक्षों में अनाकुल, आम्र वृक्षों में निष्करुण, चम्पक वृक्षों में निष्कम्प, मन्दार वृक्षों में अतिरोषी, कदली वृक्षों में निर्दय और अन्य रमणीय वृक्षों में क्रूर हनुमान उन्हें नष्ट करने लगे। यह देखकर उद्यान के चारों ओर के द्वारपाल राक्षस हाथों में मुद्गर लिए उनकी ओर दौड़े और निकट आकर उनपर प्रहार करने लगे। तट स्थित पर्वत पर समुद्र तरंगों का आघात जिस प्रकार निष्फल होता है उसी प्रकार हनुमान पर उनके अस्त्र-शस्त्र निष्फल हो गए। हनुमान ने क्रुद्ध होकर एक वृक्ष को उखाड़ा और उसी से राक्षसों को मारना आरम्भ कर दिया। जो बलवान होते हैं उनके लिए सभी कुछ अस्त्र होते हैं। पवन तुल्य अस्खलित हनुमान वृक्षों की तरह उद्यान के रक्षक राक्षसों को भी विनष्ट करने लगे। कुछ राक्षस रावण के पास गए और उसे हनुमान का आगमन, उद्यान और उद्यान रक्षक राक्षसों का विनष्ट करने की घटना निवेदित की।

यह सुनकर रावण ने हनुमान को मारने के लिए शत्रुघातक अक्षयकुमार को आदेश दिया। युद्ध में उत्साही अक्षयकुमार उद्यान में गया और हनुमान को गाली-गलौज देने लगा। हनुमान ने कहा, 'भोजन पूर्व के फल की तरह युद्ध के पूर्व ही तुम मुझे प्राप्त हुए हो।'

'अरे ओ कपि ! क्यों वृथा गाल बजा रहा है ?' इस भाँति तिरस्कार कर रावणपुत्र अक्षयकुमार नेत्रवेग रोषकारी तीक्ष्ण शर हनुमान पर बरसाने लगे। हनुमान ने भी वाण वर्षा कर अक्षयकुमार को इस प्रकार आच्छादित कर दिया जिस प्रकार उद्वेलित समुद्र का जल द्वीप को आच्छादित कर देता है। हनुमान बहुत समय तक अक्षयकुमार से युद्ध करते रहे। तदुपरान्त शीघ्र युद्ध बन्द कर देने की इच्छा से पशु की तरह अक्षयकुमार की हत्या कर डाली।

अपने भाई का निधन सुनकर इन्द्रजीत क्रुद्ध होकर युद्धक्षेत्र में आया और 'हे मारुति, खड़ा रह, खड़ा रह' कहते हुए उस पर अस्त्र से प्रहार करने लगे। दोनों महाबाहु वीरों में कल्पान्त काल की तरह दारूण और जगत् को क्षुब्ध करने वाला भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया। शस्त्रवर्षाकारी वे दोनों ऐसे लग रहे थे मानों आकाश से पुष्करावर्त मेघ वारि-वर्षण कर रहा हो। एक के अस्त्र अन्य पर अनवरत प्रतिहत हो रहे थे। इससे जल-जन्तुओं से जिस प्रकार

समुद्र आच्छादित होता है उसी प्रकार अल्प समय में ही आकाशमण्डल आच्छादित हो गया।

दुर्निवार रावण पुत्र ने जितने भी अस्त्र निक्षेप किए मारुतिपुत्र हनुमान ने उससे द्विगुणित शर निक्षेप कर उन्हें विफल कर दिया। राक्षस योद्धा भी हनुमान के अस्त्रों से क्षत-विक्षत हुए। उनकी देह से रक्तधारा प्रवाहित होने लगी। उन्हें देखकर लगा मानों जंगम पर्वत से रक्त प्रवाहित हो रहा है।

इन्द्रजीत ने स्व-सैनिकों को विनष्ट और अन्य अस्त्रों को विफल होते देख कर उन पर नागपाश अस्त्र निक्षेप कर दिया। चन्दनवृक्ष जिस प्रकार सर्पों द्वारा वेष्टित होता है उसी प्रकार उस दृढ़ अस्त्र में हनुमान पैरों से सिर तक वेष्टित हो गए। यद्यपि नागपाश को काटने एवं शत्रुओं पर जयलाभ करने का सामर्थ्य हनुमान में था फिर भी बन्धन द्वारा कौतुक दिखाने की इच्छा से वे उसी प्रकार वेष्टित रहे। इन्द्रजीत ने आनन्दित होकर उन्हें रावण के सम्मुख उपस्थित किया। विजय की इच्छा रखने वाले राक्षस हर्षित होकर उन्हें देखने लगे।

रावण हनुमान से बोला, 'हे दुर्मति, तूने यह क्या किया? बेचारे राम-लक्ष्मण तो जन्म से ही मेरे आश्रित हैं। वनवासी, फलाहारी, मलिनदेही, किरात की तरह अपना जीवन व्यतीत करने वाले वे यदि तुम पर प्रसन्न भी होते हैं तो तुझे क्या दे सकते हैं? हे मन्दबुद्धि, क्या समझ कर तू राम लक्ष्मण के कहने से यहाँ आया? देख, यहाँ आते ही तेरा जीवन विपन्न हो गया। भूचारी राम-लक्ष्मण बड़े चतुर लगते हैं जो तेरे द्वारा उन्होंने ऐसा कार्य करवाया किन्तु धूर्त तो वे ही हैं जो अन्य के हाथों अंगार बाहर करवाते हैं। अरे पहले तो तू मेरा सेवक था और अब दूसरे का सेवक बनकर आया है इसलिए तू अवध्य है किन्तु तुझे तेरे कृत्यों की सजा देने के लिए ही तुझे सामान्य विड़म्बना दी गयी है।'

हनुमान बोले, 'रावण, मैं कब तुम्हारा सेवक था और तुम मेरे स्वामी? इस प्रकार बोलने में तुम्हें लज्जा नहीं आती? बहुत दिनों पहले की बात है, तुम्हारा सामन्त खर स्वयं को खूब बलवान समझता था। उसे मेरे पिताने वरुण के कारागार से मुक्त करवाया। तदुपरान्त तुमने मुझे अपनी रक्षा के लिए पुकारा था और मैंने भी वरुण पुत्रों के हाथों से तुम्हारी रक्षा की थी। किन्तु अब तुम पाप-कार्य में रत हो गए हो। अतः रक्षा के योग्य नहीं हो। इतना ही नहीं पर-स्त्री का हरण करने वाले तुम जैसे से तो बात करना ही पाप है। हे रावण, अकेले लक्ष्मण के हाथों से ही तुम्हारी रक्षा कर सके ऐसा

कोई भी व्यक्ति तुम्हारे परिचय में नहीं है फिर उनके अग्रज राम के हाथों से तो बच सको ऐसा हो ही नहीं सकता ।'

हनुमान की बातों को सुनकर रावण अत्यन्त क्रोधित हो उठा। वक्र भृकुटि के कारण वह बड़ा भयंकर लगने लगा। वह होठ दबाकर बोला, 'ओ बन्दर, एक तो तूने शत्रु का पक्ष लिया है। फिर मेरे सम्मुख खड़े होकर ऐसे कटुक और उद्धत शब्द बोल रहा है ? अतः ऐसी इच्छा हो रही है कि तुझे मार डालूं। किन्तु तुझे जीवन से इतना वैराग्य क्यों है ? कुष्ठ रोग से जिसकी देह विशीर्ण हो गयी है, ऐसा व्यक्ति भी यदि मरना चाहे तो भी हत्या के भय से कोई उसे नहीं मारेगा, इस प्रकार तुझ दूत को जो अवध्य है मारकर हत्या का दोष कौन लेगा ? किन्तु हे अधम, तेरा माथा मुड़वाकर गधे पर चढ़ाकर समस्त नगर में, लंका की प्रत्येक गलिओं में तिरस्कृत करते हुए अवश्य ही घुमाऊँगा ।'

रावण की बात सुनकर हनुमान ने उसी समय नागपाश को काट डाला क्योंकि कमलनाल से हाथी को कितनी देर तक बाँध कर रखा जा सकता है ? तदुपरान्त हनुमान ने विद्युत दंड की भाँति उछलकर रावण के मुकुट को जमीन पर पटक दिया और पदाघात से उसे चूर्ण कर डाला। क्रुद्ध रावण चिल्लाने लगा, 'मारो, पकड़ो इस नीच को, इसे जाने मत दो' किन्तु कोई भी उन्हें पकड़ नहीं पाया। वे पदाघात से समस्त लंका को कँपाते हुए चले गए।

इस प्रकार गरुड़ की भाँति क्रीड़ा करते हुए हनुमान आकाश पथ से राम के निकट पहुँच गए। राम को नमस्कार कर सीता का चूड़ामणि उनके सन्मुख रखा। रामने तत्क्षण उसे उठाया और साक्षात् सीता की तरह उसे बारबार हृदय से लगाने लगे।

तदुपरान्त राम ने पुत्र स्नेह से हनुमान को छाती से लगा लिया और वहाँ की खबरें पूछने लगे। जिनके भुजबल की कथा सुनने को अन्य सभी उत्सुक थे ऐसे हनुमान ने लंका में घटे समस्त वृत्तान्त, निजकृत रावण का अपमान और सीता की यथार्थ स्थिति सुनायी।

षष्ठ सर्ग समाप्त

[क्रमशः

संकलन

॥ क्या अनेकान्त दृष्टि के आराधक कहलाने वाले जैन एकता का परिचय नहीं दे सकते ? ॥

अक्टूबर के अन्तिम दिनों में राजगृह, पावापुरी, शिखरजी एवं मार्ग में पड़ने वाले कई जैन तीर्थों की यात्रा के बाद मन में अनेक प्रश्न उठे। पहला प्रश्न जैन समाज से सम्बन्धित है कि हम तीर्थों के रख-रखाव, साफ-सफाई, यात्रियों की सुविधा के लिए जितना कार्य करना चाहिए उतना नहीं कर पाये हैं। देश भर से प्रतिवर्ष बड़ी संख्या में आने वाले श्रद्धालुओं के आवास, भोजन आदि की जैसी व्यवस्था होनी चाहिए वह नहीं है। आज समाज का प्रत्येक व्यक्ति इतना सक्षम अवश्य है कि वह अपनी सेवाओं के बदले व्यवस्था के लिए उचित मूल्य अदा कर सकता है। हमारी धर्मशालाएँ हैं लेकिन उनमें आवश्यक वस्तुएँ नहीं, दरवाजे टूटे, भीतर से बन्द होने वाले नहीं, खिड़कियों के दरवाजे नहीं और फ्लश आदि भी अनेक कमरों में खराब हैं। पलंग नहीं है; और बिस्तर, तकिये, बाल्टी आदि भी भाड़े पर लेनी पड़ती हैं जिनकी स्वच्छता का भगवान ही मालिक है।

जैन समाज के इन तीर्थों में श्वेताम्बर-दिगम्बर की अलग-अलग व्यवस्थाएँ हैं, कहीं झगड़े और मुकदमे भी हैं। क्या हम इन पर विचार कर अनेकान्त दृष्टि के आराधक कहलाने वाले जैन एकता का परिचय नहीं दे सकते ?

—चन्दनमल 'चांद'

जैन जगत ॥ दिसम्बर १९९२

जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या

णाण सायर ।। अक्टूबर १६६२

सम्पादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'गाँधीजी को जैन धर्म की देन' (पं. सुखलाल संघवी), 'बंधमार्ग और मोक्षमार्ग' (डा. राजेन्द्र कुमार बंसल), 'अपभ्रंश का जैन रहस्यवादी काव्य और उसका कबीर पर प्रभाव' (डा. सूरजमुखी जैन), 'गोलराडो के ऐतिह्य कार्य' (कुन्दनलाल जैन)।

तीर्थंकर ।। जनवरी १६६३

सम्पादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'तुलनात्मक धर्म विद्या' (डा. नेमीचन्द जैन), 'आखिर, यह अशान्ति क्यों ?'

तुलसी प्रज्ञा ।। अक्टूबर-दिसम्बर १६६२

इस अंक में है 'सृष्टि विज्ञान में जैन उल्लेखों का महत्व' (डा. परमेश्वर सोलंकी), 'जीवों और पौधों के लुप्त होने की समस्या' (डा. सुरेश जैन एवं चित्रलेखा जैन), 'कवि हरिराजकृत प्राकृत मलय सुन्दरी चरियं' (डा. प्रेम सुमन जैन), 'अनुप्रेक्षा : विचारों का सम्यक् चिन्तन' (डा. रज्जन कुमार), 'जैन तीर्थंकरों का गजाभिषेक' (ए. एल. श्रीवास्तव), 'भाग्य को बदलने का सिद्धान्त' (रतनलाल जैन), 'आचार्य श्री तुलसी की राजस्थानी भाषा शैली' (डा. मनोहर शर्मा), 'प्रमाण मीमांसा के परिप्रेक्ष्य में प्रमाण के लक्षण का विवेचन' (विनीता पाठक), 'जैन प्रमाण मीमांसा में स्मृति प्रमाण' (राजवीर सिंह शेखावत), 'तेरापंथ का संस्कृत साहित्य : उद्भव और विकास-३' (मुनि गुलाबचन्द निर्मोही), 'उत्तराध्ययन सूत्र में प्रयुक्त उपमान : एक विवेचन (मनुष्य और पशुवर्ग)' (डा० हरिशंकर पांडेय), 'Syadvada and the Principle of Complementarity' (Dr. S. C. Jain), 'The Sabdadvaita Concept of Bhartrihari and the Jaina Logicians' (Dr. Narendra Kumar Dash), 'Mathematical Operation in the Sthananga Sutra' (Nagendra Kumar Singha), 'Xandrames and Sandracottus (2)' (Prof. Upendra Nath Roy).

सम्बोधि ।। वर्ष १७/१६६०-६१

इस अंक में है 'Rasnirupan of Ajita Senacarya' (Dr. Parul K. Mankad), 'जाणइ-पासइ' (एच. यु. पंडया), 'प्राकृत भाषा में उद्वृत्त स्वर के स्थान पर 'य' श्रुति की यथार्थता' (के० आर० चन्द्र), 'अंग सूत्र 'आचार'-सापेक्ष जीवसिद्धि' (साध्वी सुरेखा श्री), 'मोढेरा अने जैनो' (र. ना. मेहता, के० वी० सेठ, मणिलाल मिस्त्री)।

LODHA MOTORS

A House of Telco Genuine Spare Parts and
Govt. Order Suppliers.
Also Authorised Dealers of Pace-setter and
Nicco Batteries in Nagaland State.

GOLAGHAT ROAD, DIMAPUR
NAGALAND

Phone : 3039, 3174

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Factory and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phone : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :

4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 30-2071

Branch Office :

Peerkhanpur : Bhadhoi
Phone : 5378
5578,5778

WB/NC-330
Vol. XVI No. 10 TITTHAYARA February 1993
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77